हिन्दू धर्म एवं समाज सुधार

अर्यमा

विश्वविद्यालय इतिहास विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत–842001

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही परिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के अधिक समीप पहुँच जाता है। पार्श्वनाथ और वर्धमान महावीर ने हिन्दुत्व में जो सुधार किये वे प्रायः धीरे–धीरे एवं एक प्रकार की निःशब्दता के साथ आये, किन्तु बहुत कुछ वैसा ही सुधार महात्मा बुद्ध और उनके शिष्यों ने यथेष्ट कोलाहल के साथ किया और उनके सुधारों के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म का रूप परिवर्तित नहीं हुआ कि उसका आज का रूप बुद्ध से पहले वाले रूप से बिल्कुल भिन्न हो जाये।[1–6] वैदिक आर्य यज्ञ के प्रेमी थे, किन्तु आज भी यज्ञ जहाँ–तहाँ होते रहते हैं, वैदिक आर्य उषा, सूर्य और अग्नि आदि को देवता मानते थे और आज भी हिन्दू इन देवताओं को पूजते हैं। वैदिक आर्यों का विश्वास था कि स्वर्ग में भी आत्मा इसी जीवन के समान सुख और आनन्द भोगती है, और आज भी ऐसे हिन्दूओं की कमी नहीं जो स्वर्ग में सुख पाने के लिए जीवन में धरती पर दान देते हैं। बिहार में आज भी तीन हजार वर्ष पूर्व भारतीय संस्कृति का जो रूप था, पूर्व–मध्यकाल में भी वैसा ही था और आज भी मूलतः वह वैसा ही है। किन्तु एक बात जिसमें काफी अन्तर पड़ा, वह है नास्तिकों और भौतिकवादियों को छोड़कर ऐसे हिन्दू कम थे, जो परलोक का भय नहीं मानते हों। यह वैदिक काल मी भावना से भिन्न भावना थी।[7–15]

वेदों के आधार पर आचरित धर्म वैदिक धर्म था। मंत्रद्रष्टा ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्मिक तत्वों की विशाल राशि ही वेद कही गई तथा इन तत्वों के अनुसार चलना ही वैदिक धर्म माना गया।[16] के0 दामोदरन् ने कहा है कि वर्गों के उदय से पूर्व आर्यों के समाज में जो धर्म प्रचलित था उसे वैदिक धर्म कहा जाता है। यह विश्वासों और कर्मकाण्डों की एक जटिल व्यवस्था वाला धर्म था। यह प्रकृति–पूजा का एक आदिम रूप था[17], जो इस काल में बिहार में धार्मिक विश्वासों के रूप में विद्यमान था।

वैदिक धर्म का सुविकसित स्वरूप वैदिक संहिता–ग्रन्थों में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ से ही वैदिक धर्म में प्रकृति की दिव्य सत्ताओं की प्रतिष्ठा रही है और दिव्य सत्ताओं की संख्या भारतीय धर्म में शनैः–शनैः बढ़ती गई। समाज के सभी वर्गों के लोगों ने अपनी रूचि और आवश्यकताओं के अनुकूल विशिष्ट गुणों से सम्पन्न देवताओं की प्रतिष्ठा कर ली।[18] वैदिक ऋषियों को जो कुछ उपयोगी प्रतीत होता था, उसके प्रति लोगों के देव–भाव जाग्रत हो जाते थे।

देवताओं के व्यक्तित्व के आदर्श की प्रतिष्ठा ऋषियों ने मानवों के चारित्रिक विकास के उद्देश्य से की है। जो कुछ देवताओं ने जिस विधि से किया है, वैसा ही मानवों को भी करना चाहिए। इस प्रकार धर्म के स्थान में देवताओं के व्यक्तित्व की कल्पना का विशेष महत्व है। हिन्दू धर्म की तात्विक प्रवृत्तियों तक पहुँचने के लिए देवताओं के व्यक्तित्व को समझ लेना अपेक्षित है।

मानवीय कल्याण के अनुसार देवता मानवों से अधिक सशक्त हैं। वे प्रकृति की शक्तियों का नियंत्रण करते हैं। देवताओं का सभी प्राणियों पर एकछत्र अधिकार है। उनके विधान से प्रतिकूल कोई नहीं चल सकता। साधारणतः देवता लोकोपकारी हैं। वे सत्यपरायण हैं और किसी को धोखा नहीं देते। देवता सच्चारित व्यक्तियों के मित्र हैं। वे उनकी रक्षा करते हैं और पापियों को दण्ड देते हैं। वेदों में इन देवताओं को तीन समूहों – वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में बाँटा गया है। स्वर्ग के दवताओं में सूर्य, उषा, सविता, वरूण, विष्णु, अश्विनी, अदिति आदि थे। पृथ्वी–देवताओं में अग्नि, सोम, सरस्वती आदि और अन्तरिक्ष के देवताओं में इन्द्र, रूद्र, वायु प्रजन्य आदि प्रमुख थे।

लधुदेवताओं में भृगु, गन्धर्व, अप्सरा, वन वृक्ष और पौधों के अधिष्ठाता देव गोचर और पर्वतों के अधिष्ठाता देव, वस्तष्यति, क्षेत्रपति, सीता, नक्षत्र, यज्ञ के उपकरण युद्ध के अस्त्र–शस्त्र और पशु थे। इसके अतिरिक्त कृतदेव हैं, जिनमें धाता–विधाता, त्राता, नेता आदि हैं। देवताओं से लोगों की अतिशय समीपता थी। लोगों का विश्वास था कि देवताओं की सहायता से हमें शत्रुओं पर विजय मिलेगी, धन प्राप्त हो सकेगा तथा हमारे दुःखों और पापों का निवारण होगा।

इन देवताओं में अधिक लोकप्रिय इन्द्र था, जिसके नाम के साथ बहुत सी प्रमुख प्राकृतिक परिघटनाएँ जुड़ी हुई थीं। ऋग्वेद में 250 ऋचाएँ इन्द्र के बारे में ही है। इन्द्र अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी देवता था जो दस्युओं का विजेता था। आर्यों को अपने शत्रुओं से प्रायः संघर्ष रहता था। इस संघर्ष में आर्यों को देवताओं की सहायता का पूरा भरोसा था। इन्द्र के सम्बन्ध में वैदिक धारणा थी कि उसके बिना विजय नहीं प्राप्त हो सकती। वे अचल को भी चलायमान कर देते हैं। वे शत्रुओं का सामना करने में समर्थ हैं।[19] इन्द्र मेघों को रोक रखने वाले असुरों को वज्र से मारकर जल बरसाते हैं। युद्ध करनेवाल सहायता पाने के लिए इन्द्र का आह्वान करते थे।

आर्यों का विश्वास था कि देवता पापियों को दण्ड देते हैं। उनके दण्ड से बचने के लिए कभी–कभी स्तुतियाँ पर्याप्त मानी जाती थीं। वरूण से ऋषि ने कहा है – हमारे पितरों को पाप से मुक्त कीजिए। हमें पाप से बचाइये।[20] वरूण सभी देवताओं के पोषक हैं और वे मूर्तिमान सत्य हैं। वरूण का उल्लेख जगत के नियन्ता और ऋतु के अधिपति के रूप में हुआ है। प्राचीन भारतीयों का विश्वास था कि वरूण का समस्त नभोमंडल पर शासन है और वह रथ पर सवार होकर उसमें घूमता है।

सूर्य अपने लौकिक या व्यावहारिक स्वरूप द्वारा जगत को प्रकाश देता है और अपने आध्यात्मिक स्वरूप द्वारा मानवों की वृद्धि करता है। यही सूर्य की दिव्यता है।[21] सूर्य की उपासना मानव के लिए स्वाभाविक है, क्योंकि वह अपने प्रकाशन से समस्त जगत को आलोकित करता है। सूर्य की पूजा सवित, मित्र, पूषण, विष्णु आदि रूपों में भी की जाती थी।

वैदिकगण विष्णु से भी परिचित थे। ऋग्वेद में विष्णु के बारे में केवल छः ऋचाएँ हैं जिनमें बताया गया है कि उसने तीन कदमों में जगत को माप डाला था। विष्णुलोक में देवताओं के उपासक प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। उस लोक में मधु के स्रोत हैं।[22] विपत्ति में पड़े मानवों की रक्षा के लिए विष्णु ने स्वयं तीन बार पृथ्वी की परिक्रमा की है। वे आह्वान करनेवालों के आमंत्रण पर आ उपस्थित होते हैं।

देवताओं में रूद्र विशेषकर रोचक और असाधारण हैं और अन्य देवताओं के विपरीत नकारात्मक गुणों से विभूषित हैं। सम्भवतः आर्यों ने रूद्र को स्थानीय गणों से लिया है और वैदिक देवकुल में उसकी विलक्षण स्थिति के यही कारण हैं। रूद्र सम्भवतया वरूण के समान अपने चरित्र की एक भयावह दिशा भी रखता था, परन्तु वरूण के विपरीत वह आचार–सीमा में सर्वथा बाहर था। वह एक धनुर्धारी देवता थे, जिसके वाण श्रोग उत्पन्न करते थे। महारोग एवं विनाश की उत्पत्ति करने वाले उसके वाणों से रक्षा के निमित्त उसका संस्तवन किया जाता था। उसका एक उदार पक्ष भी था, क्योंकि यह आरोग्यकर वनस्पतियों का अभिभावक था और इस रूप में वह स्वेच्छा से जिन पर विशेष अनुकम्पा करता था उन्हें स्वास्थ्य प्रदान कर सकता था।

वैदिक देव–कुल में अग्नि को बड़ा प्रमुख स्थान प्राप्त था। अग्नि का धार्मिक संस्कारों में आधारभूत महत्व था, क्योंकि लोग देवताओं को अपनी आहुतियाँ अग्नि की सहायता से भेज सकते थे। ऋग्वेद की लगभग 200 ऋचाएँ अग्नि के पक्ष में हैं। अग्नि की ही भाँति सोम को भी देवताओं के अमरत्व का साधन माना जाता था। सोम के बारे में ऋग्वेद की एक सौ बीस ऋचाएँ हैं।

ऋग्वेद में अश्विनी, वायु, मरूत, पर्जन्य, यम आदि देवताओं का भी उल्लेख हुआ है और ये देवता भी इन्द्र, मित्र और वरूण की तरह प्राचीन आर्यों को सुख–चैन का जीवन बिताने और प्रकृति की शक्तियों से संचार स्थापित करने में सहायता करते थे।

देवताओं के अतिरिक्त देवियों की भी कल्पना की गई थी, जिसमें उषा का प्रधान स्थान है। यह प्रातःकालीन अधिष्ठात्री देवी के रूप में अत्यन्त मनोहारिणी कल्पना के साथ वर्णित की गई है। अदिति आर्यों की सार्वभौम भावना की देवी थी। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त थी तथा उसका प्रभाव सर्वत्र था। मनुष्य की बुद्धि को भी देवी संज्ञा देकर सरस्वती का रूप प्रदान किया गया। आर्यों ने विभिन्न नदियों को भी देवी रूप में स्वीकार किया। उनके द्वारा वन–देवी की भी प्रतिष्ठा आख्यान के रूप में की गई है। आर्यों की धर्मावस्था का केन्द्र यज्ञ था। यज्ञ का स्वरूप दो प्रकार का था–नित्य और नैमित्तिक। नित्य यज्ञ

पंचमहायज्ञों के रूप में थे, जो व्यक्तियों द्वारा अपने घरों में नित्य ही स्वयं किए जाते थे, जबकि यजमान अपने पुरोहितों की सहायता से विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति कराने के लिए नैमित्तिक यज्ञ करवाते थे। ऐसे उद्देश्य असंख्य हो सकते थे, जिनकी परिधि के भीतर प्रायः सभी प्रकार की इहलौकिक और पारलौकिक सिद्धियाँ आ सकती थी।[24] कुछ यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाती थी।

धीरे–धीरे यज्ञानुष्ठान अधिकाधिक जटिल होते गये और इसके परिणाम स्वरूप पुरोहितों के कई वर्ग पैदा हो गये, जो विभिन्न प्रकार की धार्मिक तथा आनुष्ठनिक क्रियाओं का संचालन करते थे। संहिताकाल और उपनिषद्काल के मध्यवर्ती युग में यांत्रिक कर्मकाण्ड तथा वाह्याडम्बर में अनावश्यक वृद्धि हुई। समस्त वैदिक वाङ्मय पर ब्राह्मण की आज्ञाओं का उल्लंघन करने से दैवी विपदाओं का सामना करना पड़ेगा और उनके अन्धविश्वास तथा ब्राह्मणों के बढ़ते प्रभाव के विरूद्ध भी भावनाएँ उमड़ने लगी और उस पृष्ठभूमि में बिहार में भी औपनिषदिक क्रान्ति हुई जिसकी अगुवाई काशेष, अजातशत्रु और वेदवक्ता गार्ग्य, वालाकि, कैकेय अश्वपति, उद्दालक, जनक विदेह और याज्ञवल्क्य आदि मनीषियों ने की। इन लोगों के प्रयासों ने ब्राह्मणों यज्ञानुष्ठान में पैतृक एकाधिकार के दावे को अस्वीकार कर दिया। धीरे–धीरे समाज में यज्ञों के प्रति उदासीनता होने तथा उसके कर्मकाण्डीय और क्रियायुक्त विधानों का विरोध होने लगा। यह स्वीकार किया गया कि ज्ञान के अभाव में परलोक की प्राप्ति न तो यज्ञ से सम्भव है न तप से बल्कि यज्ञ में निहित धार्मिक भावना से ही वह सम्भव है।[25]

उपनिषदों के अनुसार यज्ञ और पुण्य कार्यों के फल पा लेने पर स्वर्ग से मानव इसी लोक में या इससे नीचे जा गिरते हैं।[26] तप और श्रद्धा के साथ जो लोग अरण्य में रहते हैं, शान्त और विद्वान हैं तथा भिक्षाटन के द्वारा जीविका उपार्जन करते हैं, वे सूर्यद्वार से अव्यायात्मा या अमृतपुरूषलोक को प्राप्त कर लेते हैं।[27] कर्मकाण्ड के द्वारा जिन लोकों की प्राप्ति सम्भव है, उन्हें उपनिषद् तुच्छ बतलाकर ब्रह्मनिष्ठ गुरू से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की सीख देता है। यही उपनिषद् का विशेषधर्म है। मुण्डक के अनुसार नाव–रूपी यज्ञ अदृढ़ है, वे वृद्धावस्था और मृत्यु से नहीं बचा सकते।[28] यह अभिनव क्रम वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों के द्वारा ब्रह्म–प्राप्ति के सरल सोपान के रूप में अपनाया गया। इसमें ज्ञान के द्वारा विशुद्ध सत्व तथा ध्यान की महत्ता ब्रह्मप्राप्ति के लिए विशेष प्रतिष्ठित है। उपनिषदों में सुप्रतिष्ठित इस आश्रम–योजना को परवर्ती युग में वर्णाश्रम–धर्म के नाम से सूत्र, स्मृति और पुराण में अंगीकृत देखा जा सकता है।

उपनिषद् में पाप की भी परिभाषा नियत की गई है। इसके अनुसार अपनी इन्द्रियों को अनुचित विषयों की ओर प्रवृत्त करना पाप है। अपनी इन्द्रियों का उन्हीं विषयों के सम्पर्क में आना उचित है जो अयोग्य न हो, अन्यथा पाप होता है।[29]

उपनिषदों के अनुरूप महाभारत में यज्ञों के द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति सुलभ बताई गई है, पर यज्ञ से अधिक महत्व तप और दान को दिया गया है।[30] महाभारत में वैदिक यज्ञों की प्रतिष्ठा मात्र हैं, इन्हीं के साथ मन, वाणी और कर्मों के द्वारा यज्ञ करने की रीति का प्रचलन हुआ। धार्मिक विधियों के द्वारा सामाजिक अभ्युत्थान की अपूर्व योजना महाभारत में मिलती है। शांति पर्व में स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि धर्म वही है जिसके द्वारा प्रजा धारण की जाती है।

महाभारत के अनुसार वेदों को जानना मात्र उपयोगी नहीं है, क्योंकि वेदों में ऐसी शक्ति नहीं है कि वे मायावी और पापी का उद्धार कर सकें। पाप को पुण्य से ही दूर किया जा सकता है। पुण्य का मार्ग है तप और यज्ञ। तप निष्काम होना चाहिए। ऐसा तप महाभारतीय युग में वैदिक यज्ञों के सम्पादन से अधिक महत्वपूर्ण माना गया।[32]

महाभारत में यज्ञों के समान ही महत्व तीर्थ–यात्रा के लिए निर्धारित किया गया है। महाभारत के अनुसार दरिद्र यज्ञों को करने में असमर्थ थे, क्योंकि यज्ञों के लिए अत्यधिक सामग्री लगती थी और नाना प्रकार के अन्य साधनों की आवश्यकता होती थी। यज्ञों का विधिपूर्वक सम्पादन राजा या समृद्ध लोगों के लिए सम्भव था। इसके विपरीत तीर्थ–यात्रा दरिद्रों के लिए सहज थी। महाभारत में तीर्थ–यात्रा के पुण्यात्मक महत्व यज्ञों से बढ़कर सिद्ध किया गया। इसमें एक और विशेषता थी। सभी वर्णों के लोग, शूद्र भी, तीर्थ–यात्रा से लाभ उठ सकते थे, पर ये एक द्वार केवल द्विजातियों के लिए खुला था।

हिन्दू धर्म में तीर्थों की प्रतिष्ठा का प्रथम कारण यह भावना है, जिसके अनुसार प्राचीन भारतीय नागरिक समझता था कि तीर्थों की जलवायु और प्रकृति का मानव–व्यक्तित्व के विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। तीर्थों में प्रायः यज्ञ होते थे। इनमें विद्या और तप से समन्वित वेदपारंग ब्राह्मण महात्माओं की पुण्य–कथाओं का वाचन

करते थे। इस वातावरण में तीर्थयात्रियों को उच्च आध्यात्मिक तत्व–ज्ञान का परिचय सरलता से हो सकता था।[33]

मनु के अनुसार धर्म मानव के कर्तव्य का निर्णय के लिए है।[34] मानव धर्म वर्णाश्रम–व्यवस्था के अनुसार है। मनु ने वर्णाश्रम धर्म के अतिरिक्त देश–धर्म, कुल–धर्म, पाखण्ड–धर्म और गण–धर्म की योजना प्रस्तुत की है।[36] मनु के अनुसार वृद्धों की सेवा करने वाले अभिवादनशील व्यक्तियों की आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं। मनु की योजना के अनुसार प्यासे को पानी देने वाला तृप्त होता है, भूखे को भोजन देने वाला अक्षय सुख प्राप्त करता है और दीपदान करने वाले को उत्तम नेत्र मिलते है।[36]

मनु ने माता–पिता और आचार्य की सेवा करने का विधान बनाकर कहा– ये तीनों लोक हैं, अक्षय हैं, वेद है और अग्नि है। इन तीनों की सावधानी से पूजा करने पर गृहस्थ तीनों लोकों को जीत लेता है। माता की भक्ति से मानवलोक, पिता की भक्ति से मध्यम लोक और गुरू की सेवा से ब्रह्मलोक भोगने का अवसर प्राप्त होता है। इन्हीं तीनों से सम्बद्ध परम धर्म है, शेष उपधर्म है।[37] कुलस्जी और कन्याओं को सर्वथा सन्तुष्ट रखने की योजना प्रस्तुत करते हुए मनु ने कहा है कि जिस कुल में बधु और कन्याएँ शोक करती हैं, उसका नाश हो जाता है। स्त्रियों के प्रसन्न होने से सारा कुल प्रकाशित होता है।[38]

व्यावहारिक जीवन में मानव की कर्मण्य प्रवृत्ति को प्रशस्त दिशा में संचारित करने के लिए मनु ने उपयेगी नियम बनाये है, जिसके अनुसार ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए, संध्या करनी चाहिए, अपवित्र स्थान में अध्ययन नहीं करना चाहिए, धन को दुर्लभ न मानकर आमरण उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। यदि इस प्रयास में कहीं असफलता मिले तो अपना तिरस्कार करने की कोई अवश्यकता नहीं है। मनु ने आदेश दिया है कि असमय में अपरिचित व्यक्ति के साथ न चलें, पवित्र स्थानों के समीप गन्दगी न फैलाएँ, सत्य बोलें, प्रिय बोलें, अप्रिय सत्य न बोलों, असत्य प्रिय होने पर भी न बोलें तथा शुष्क वैर और विवाद न करें, किसी अंगहीन, दोषी, कुरूप या बहिष्कृत व्यक्ति पर आक्षेप न करें। द्वेष, दम्भ, मान, क्रोध और क्रूरता को छोड़ दें। हाथ, पैर, नेत्र तथा वाणी को चपल न बनाएँ और न दूसरों की हानि करने की चेष्टा करें। अपने कुल की पद्धति पर चलें, छोटे लोग तिरस्कार भी कर दे तो चुपचाप सह लें और सज्जनों के बीच अपना ठीक परिचय दें।[39]

पौराणिक धर्म की प्रधानता रही है भक्ति की। साधन की दृष्टि से भक्ति तीन प्रकार की है– मानस, वाचिक और कायिक। ध्यान और धारणापूर्वक बुद्धि के द्वारा वेदादि का विमर्श मानस–भक्ति है। मंत्र, जप, वेद–पाठ तथा आरण्यकों के जप वाचिक भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। मन और इन्द्रियों को रोकने वाले व्रत, उपवास, नियम, चन्द्रायण व्रत आदि के द्वारा भगवान की आराधना कायिक भक्ति है।[40]

वैधानिक दृष्टि से भक्ति के अन्य तीन रूप लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक हैं। लौकिक भक्ति में घी, दूध, रस, दीप, चन्द्र, माला, धूप की सुगन्धि, आभूषण, सुवर्ण, हार, का अध्ययन आदि वैदिक भक्ति है। यज्ञ और देवताओं के निमित्त किये हुए सभी कर्म वैदिक भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकार की होती है– सांख्यज और योगज। सांख्य दर्शन के अनुकूल प्रकृति और पुरूष का विवेचन सांख्यज भक्ति है और योगाभ्यास से ध्यान करना योगज भक्ति है।[41] भक्ति की उपर्युक्त परिधि के भीतर इस काल के बिहार की प्रायः सभी धार्मिक विधियों का समावेश हो जाता है।

संदर्भ सूचीः–

1. *महाभारत उद्योग पर्व–35/2*
2. *कणादसूत्र–1/1/2*
3. *मनुस्मृति–6/92*
4. *वही–2/92*
5. *महाभारत–अश्वमोधिकपर्व–94/31*
6. *शांतिपर्व–182/30*
7. *वही–161/5–6*
8. *वही वनपर्व–2/71/73*
9. *भागवत–3/12/41*
10. *वायुपुराण–59वाँ अध्याय*
11. *ब्रहापुराण–30/20–21*
12. *अशोक का द्वितीय स्तम्भ–लेख।*
13. *रामधारी सिंह दिनकर–संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ0–101*

14. ज0श0 मिश्र–प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, नवम संस्करण 2004, पृ0 624
15. के0 दामोदरन–भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ0 37
16. ऋग्वेद–1/23/18–19
17. ऋग्वेद–2/12/9
18. ऋग्वेद–7/86/5
19. राधाकृष्णन–इण्डियन फिलॉसफी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, भाग–1 पृ0 80
20. ऋग्वेद–1/154/5
21. वही–1/155/6
22. शतपथ ब्राह्मण–2/6/4/8
23. शतपथ ब्राह्मण–10/5/4/15
24. मुण्डक उपनिषद्–1/2/8–10
25. वही–1/2/1
26. वही–2/7
27. बृहदारण्यक–1/3/2–6
28. महाभारत अश्वमेधिक पर्व–94/30
29. वही–शान्तिपर्व–110/11 आदिपर्व–160/18
30. महाभारत उद्योगपर्व–43वाँ अध्याय
31. महाभारत वनपर्व–93/14–15
32. मनुस्मृति–1/26
33. वही–1/118
34. वही–4/229
35. वही–2/225–237
36. वही–3/51–62
37. वही–4/92–152, 174, 186–191, 218 तथा 255
38. पद्मपुराण सृष्टिखण्ड–15वाँ अध्याय तथा पातालखण्ड 85वाँ अध्याय
39. वही
40. वही–उत्तरखण्ड, 126वाँ अध्याय
41. वद्मपुराण–सृष्टिखण्ड के 23वें अध्याय